

नम सर्वज्ञाय

रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविरचित-

अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिकास्तवनटीका

श्रीमल्लिषेणसूरिप्रणीता

स्याद्वादमञ्जरी

एम्० ए० इत्युपपदधारिणा शास्त्रिणा

जगदीशचन्द्रेण

हिन्दीभाषाया अनुवादिता

उपोद्घात-परिशिष्टानुक्रमणादिभिः संयोज्य च
सम्पादिता

सा च मुम्बापुरीस्थ

श्रेष्ठि मणीलाल, रेवाशङ्कर जगजीवन जौहरी

परमश्रुतप्रभावकमण्डलाधिकारिभि'

मुम्बय्या न्यूभारत-मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्राकाश्य नीता

वीरनिर्वाण संवत् २४६०   विक्रम संवत् १९९१   ईसवी सन् १९३५

मूल्य सार्द्धरूप्यकचतुष्टय

प्रकाशक—
शेठ मणीलाल, रेवाशंकर जगजीवन जोहरी
आ० व्यवस्थापक परमश्रुतप्रभावकमंडल
जौहरीबाजार, बम्बई नं० २



मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस, ६, केळेवाडी,
गिरगाव, बंबई नं ४

विषयानुक्रमणिका ।

प्राक्कथन।

आज मेरे लिए बड़े हर्ष और सौभाग्यका अवसर है, कि मैं अपने सुयोग्य शिष्य तथा प्रिय मित्र श्री जगदीशचन्द्र जैन एम ए द्वारा अनुवादित तथा संपादित स्याद्वादमञ्जरीके आदिम कतिपय शब्द लिख रहा हूँ। ग्रंथ, ग्रंथकार, ग्रंथके सिद्धान्तों और उनसे सम्बद्ध अनेक विषयोंका परिचय तो जगदीश चन्द्रजीने पाठकोंको सरल और निर्दोष राष्ट्रीय भाषामें भली भाँति दे ही दिया है। मुझे इस विषयमें यहाँपर अधिक कुछ नहीं कहना है। मेरे लिये तो एक ही विषय रह गया है। वह है पाठकोंसे सम्पादक महोदयका परिचय देना।

श्री जगदीशचन्द्र जैन सुप्रसिद्ध श्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके अग्रगण्य स्नातकोंमेंसे हैं। उन्होंने वहाँसे सन् १९३२ में दर्शन (Philosophy) में एम ए की उपाधि प्राप्त की थी। विश्वविद्यालयके गर्भमें भारतीय-दर्शन—विशेषत जैन और बौद्ध—के साथ साथ उन्होंने पाश्चात्य दर्शनका गहरा और विस्तृत अध्ययन किया, और दार्शनिक समस्याओंपर निष्पक्ष भावसे स्वतंत्र विचार किया। मुझे उनके आचार विचार और आदर्शोंसे खूब परिचिति है, क्योंकि वे कई वर्ष तक मेरी निरीक्षकता (Wardenship) में छात्रावासमें रह हैं, और उन्होंने मेरे साथ मनोविज्ञान (Psychology) और भारतीय-दर्शनका अध्ययन किया है। सायंकालके भ्रमणमें अक्सर उनके साथ दार्शनिक विषयोंपर बातचीत हुआ करती थी। अपनी इस परिचितिके आधारपर मैं निःसंकोच यह कह सकता हूँ, कि श्री जगदीशचन्द्रजी एक बहुत होनहार दार्शनिक विद्वान् और लेखक हैं। दार्शनिकोंके दो सबसे बड़े गुण—निष्पक्ष और न्यायपूर्वक विचार और समन्वय बुद्धि—उनमें कूट कूट कर भरे हैं। वे केवल दार्शनिक ही नहीं हैं, सहृदय भी हैं। यही कारण है कि अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और अहिंसावादमें उनकी श्रद्धा है। स्याद्वादमञ्जरीमें इन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है, इसीलिये उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथका राष्ट्रभाषामें अनुवाद तथा सम्पादन किया है। अनुवाद और सम्पादन बहुत ही उत्तम रीतिसे हुए हैं। प्रत्येक श्लोक और उसकी टीकाके अनुवादके अन्तमें जो भावार्थ दिया गया है, उसमें विषयका बहुत सरलतासे प्रतिपादन हुआ है। कहीं कहीं जो टिप्पणियाँ दी गई हैं, वे भी बहुत उपयोगी हैं। अन्तमें सब दर्शनोंसम्बन्धी विशेषत बौद्धदर्शन सम्बन्धी—परिशिष्टों और कई प्रकारकी अनुक्रमणिकाओंने पुस्तकको बहुमूल्य बना दिया है। गुणज्ञ पाठक स्वयं ही समझ जायँगे कि सम्पादक महोदयने कितना परिश्रम किया है।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है, कि इस पुस्तकका प्रचार खूब हो, और विशेषत उन लोगोंमें हो जो जैनधर्मावलम्बी नहीं हैं। सत्य और उच्च भाव और विचार किसी एक जाति या मजहबवालोंकी वस्तु नहीं हैं। इनपर मनुष्यमात्रका अधिकार है। मनुष्यमात्रको अनेकान्तवादी, स्याद्वादी और अहिंसावादी होनेकी आवश्यकता है। केवल दार्शनिक क्षेत्रमें ही नहीं धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रमें, विशेषत इस समय—जब कि समस्त भूमण्डलकी सभ्यताका एकीकरण हो रहा है और सब देशों, जातियों और मतोंके लोगोंका संपर्क दिन पर दिन अधिक होता जा रहा है—इन ही सिद्धान्तोंपर आरूढ होनेसे संसारका कल्याण हो सकता है। मनुष्य-जीवनमें कितना वाञ्छनीय परिवर्तन हो जाय, यदि सभी मनुष्योंको प्रारम्भसे शिक्षा मिले कि सब ही मत सापेक्ष हैं, कोई भी मत सर्वथा सत्य अथवा असत्य नहीं है, पूर्ण सत्यमें सब मतोंका समन्वय होना चाहिये, और सबको दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा कि वे दूसरोंसे अपने प्रति चाहते हैं। मैं तो इस दृष्टिके प्राप्त कर लेनेको ही मनुष्यका सभ्य होना समझता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक पाठकोंको इस प्रकारकी दृष्टि प्राप्त करनेमें सहायक होगी।

भिखनलाल आत्रेय एम ए, डी लिट्,
दर्शनाध्यापक,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

आषाढ पूर्णिमा १९९२

प्रकाशकका निवेदन ।



लगभग २४ वर्षके बाद यह ग्रन्थ फिर प्रकाशित किया जा रहा है। पहले इसके एक अंश (पत्र १०८ तक) की टीका पं० जवाहरलालजी साहित्यशास्त्रीकृत और शेषांश (पत्र २१७ तक) की पं० गदाधरजी शास्त्रीकृत थी। अबकी बार पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए० ने इसका सम्पादन किया है, और आधुनिक तुलनात्मक पद्धतिसे ग्रन्थको सर्वाङ्गसुन्दर बनानेके लिए उन्होंने यथेष्ट परिश्रम किया है। गहन विषयके विद्यार्थियोंके लिए इसमें अब काफी मसाला इकट्ठा कर दिया गया है। आशा है कि इसका आदर होगा। वास्तवमें यह टीका और इसके परिशिष्टादि सब अंग बिल्कुल नये हैं। पहले संस्करणमें इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सिवाय इसके कि मूल ग्रन्थ वही है, जो पहले था।

प० म० की तरफसे और भी कई नये महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रंथ सुसम्पादित होकर छप रहे हैं।

जौहरी बाजार, बम्बई
ज्येष्ठ कृष्ण ३०
वि० सं० १९९१



निवेदक—
मणीलाल जौहरी

सम्पादकीय निवेदन ।

आज तक स्याद्वादमंजरीके निम्न लिखित संस्करण निकल चुके हैं—

१ यशोविजय ग्रंथमाला काशी
२ अगरचन्द्रजी भैरोदानजी सेठिया बीकानेर
३ हीरालाल हंसराज जामनगर
४ रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई
५ चौखंभा सीरीज काशी
६ आर्हतमतप्रभाकर पूना
७ भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पूना

इन आवृत्तियोंसे प्रस्तुत स्याद्वादमंजरीकी प्रस्तुत आवृत्तिमें कुछ विशेषता है या नहीं, इसका निर्णय तो स्वयं विज्ञ पाठकगण ही ठीक ठीक कर सकेंगे। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि प्रस्तुत ग्रंथको अनेक दृष्टियोंसे सांगोपांग परिपूर्ण बनानेका यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत संस्करणका संक्षिप्त परिचय

१ संशोधन—इस ग्रंथका संशोधन रायचन्द्रमालाकी एक प्राचीन और शुद्ध हस्तलिखित प्रतिके आधारसे किया गया है। इस प्रतिके आदि अथवा अन्तमें किसी संवत् आदिका निर्देश न होनेसे इस प्रतिका ठीक ठीक समय मालूम नहीं हो सका, परन्तु प्रति प्राचीन मालूम होती है।

२ संस्कृतटिप्पणी—संस्कृतके अभ्यासियोंके लिये मूल पाठके कठिन स्थलोंको स्पष्ट करनेके लिये इस ग्रंथमें संस्कृतकी टिप्पणियां लगाई गई हैं। इन टिप्पणियोंमें सेठ मोतीलाल लाधाजीद्वारा संपादित स्याद्वादमंजरीकी संस्कृत टिप्पणियोंका भी उपयोग किया गया है। एतदर्थ हम उक्त सम्पादक महोदयका आभार मानते हैं।

३ अनुवाद—अनुवादको यथाशक्य सरल और प्रवाहबद्ध बनानेका प्रयत्न किया गया है। इसके लिये अनुवाद करते समय बहुतसे शब्दोंकी छूट भी लेनी पड़ी है। विषयका वर्गीकरण करनेके साथ विषयको सरल और स्पष्ट बनानेके लिये न्यायके कठिन विषयोंको 'शंका–समाधान,' 'वादी–प्रतिवादी,' 'स्पष्टार्थ' रूपमें उपस्थित किया गया है। प्रत्येक श्लोकके अंतमें श्लोकका संचित भावार्थ दिया गया है। अनेक स्थलोंपर भावार्थ लिखते समय ग्रंथके मूल विषयके साथ विषयोंकी भी विस्तृत चर्चा की गई है (उदाहरणके लिये देखो श्लोक २८–२९ का भावार्थ)। कहीं कहीं हिन्दी अनुवाद करते समय और भावार्थ लिखते समय हिन्दीकी टिप्पणियां भी जोड़ी गई हैं।

४ अयोगव्यवच्छेदिका—इस संस्करणमें हेमचन्द्रकी दूसरी कृति अयोगव्यवच्छेदिकाका अनुवाद भी दे दिया गया है। इसके साथ तुलनाके लिये सिद्धसेन और समंतभद्रकी कृतियोंमेंसे टिप्पणीमें अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

५ परिशिष्ट—यह इस संस्करणका महत्त्वपूर्ण भाग है। इसमें जैन, बौद्ध, न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, पूर्वमीमांसा, वेदान्त, चार्वाक और विविध नामके आठ परिशिष्ट गर्भित हैं। जैन परिशिष्टमें तुलनात्मक दृष्टिसे जैन पारिभाषिक शब्दों और विचारोंका स्पष्टीकरण है। बौद्ध परिशिष्टमें बौद्धोंके विज्ञानवाद, शून्यवाद, अनात्मवाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तोंका पाली, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाके ग्रंथोंके आधारसे प्रामाणिक विवेचन किया गया है। आशा है इसके पढ़नेसे पाठकोंकी बौद्ध दर्शन संबंधी बहुतसी भ्रान्तिपूर्ण धारणायें दूर होंगी। तीसरे न्यायवैशेषिक परिशिष्टमें ईश्वर संबंधी चर्चा विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। चौथे सांख्ययोग परिशिष्टमें सांख्य, योग, जैन और बौद्धदर्शनोंकी तुलना करते समय जो ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति संबंधी भेद दिखाया गया है, वह ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। पांचवें परिशिष्टमें मीमांसक और जैनोंकी तुलना, छठेमें शंकरके मायावादकी विज्ञानवाद और शून्यवादसे तुलना, सातवेंमें चार्वाकमत और आनन्दघनजीका उसे जिनभगवानकी कुक्ष बताना, और आठवें परिशिष्टमें आजीविक सम्प्रदाय—ध्यानपूर्वक पढ़ने योग्य विषय हैं।

६ अनुक्रमणिका—इस संस्करणमें नीचे लिखी तरह अनुक्रमणिकायें लगाई गई हैं—

(१) स्याद्वादमंजरीके अवतरण—इन अवतरणोंमें बहुतसे अवतरणोंकी मैंने स्वयं खोज की है। ये अवतरण प्रायः सेठ मोतीलाल लाधाजी और प्रो. ध्रुवकी स्याद्वादमंजरीके आधारसे लिये गये हैं।

(२) स्याद्वादमंजरीमें निर्दिष्ट ग्रंथ और ग्रंथकार

(३) अन्ययोगव्यवच्छेदिकाके श्लोकोंकी सूची

(४) अन्ययोगव्यवच्छेदिकाके शब्दोंकी सूची

(५) स्याद्वादमंजरीके न्याय

(६) स्याद्वादमंजरीके शब्दोंकी सूची

(७) स्याद्वादमंजरीकी संस्कृत और हिन्दी टिप्पणोंमें उपयुक्त ग्रंथ और ग्रंथकार

(८) अयोगव्यवच्छेदिकाके श्लोकोंकी सूची

(९) अयोगव्यवच्छेदिकाके शब्दोंकी सूची

(१०) अयोगव्यवच्छेदिकाकी टिप्पणीमें उपयुक्त ग्रंथ

(११) परिशिष्टके शब्दोंकी सूची

(१२) परिशिष्टमें उपयुक्त ग्रंथ

(१) सम्पादनमें उपयुक्त ग्रंथ

उपसंहार

जिस समय मैं बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीमें एम. ए. के क्लासमें अपने आदरणीय अध्यापक प्रो. फणिभूषण अधिकारी एम. ए. से स्याद्वादमंजरी पढ़ता था, उस समय मुझे उनके साथ दर्शनशास्त्रके अनेक विषयोंपर चर्चा करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। उसी समयसे मेरी इच्छा थी, कि मैं स्याद्वादमंजरीके ऊपर कुछ लिखकर जैनदर्शन तथा राष्ट्रभाषाकी सेवा करूँ। सौभाग्यसे पिछले वर्ष मेरा बम्बईमें आना हुआ, और मैंने रायचन्द्र जैनशास्त्रमालाके व्यवस्थापक श्रीयुत मणीलाल रेवाशंकर जगजीवन जौहरीकी स्वीकृति मिलते ही स्याद्वादमंजरीका काम आरम्भ कर दिया। इस ग्रंथके आरम्भसे इसकी समाप्ति होनेतक अनेक सज्जनोंने जो मुझे अनेक प्रकारसे सहयोग दिया है, उसके लिये मैं सबका आभार मानता हूँ। स्वर्गीय श्रीयुत दलसुख डाह्याभाई मालवणियाने स्याद्वादमंजरीके मूल और उसके अनुवादके बहुतसे प्रूफोंका संशोधन किया है। मेरे बन्धु साहित्यरत्न पं. दरबारीलालजी न्यायतीर्थने इस ग्रंथ संबंधी अनेक प्रश्नोंकी चर्चामें बहुत समय लगाकर अपना बहुमूल्य समय खर्च किया है। स्थानीय युनिवर्सिटी लायब्रेरीके महा. ए. पाण्डे बी. ए., एलएल. बी., वकील बम्बई हायकोर्टने स्थानीय एशियाटिक लायब्रेरीमें मुझे हर प्रकारकी सुविधा दिलाकर, तथा एन. आर. फाटक बी. ए. ने अपनी लायब्रेरीसे बहुतसी पुस्तकें देकर मुझे सहायता पहुँचाई है। रायचन्द्रशास्त्रमालाके मैनेजर श्रीयुत कुन्दनलालजीने मेरे लिये आवश्यकीय पुस्तकोंका आदिका प्रबंध करके उदारता दिखाई है। पं. नाथूरामजी प्रेमी, मुनि हिमांशुविजयजी, मोहनलाल दलीचन्द देसाई बी. ए., एलएल. बी., तथा मोहनलाल भगवानदास झवेरी एम. ए. सालिसीटर आदि सज्जनोंने भी हरतरह अपनी सहानुभूतिका प्रदर्शन किया है। मेरी पत्नी कमलश्रीने हिन्दीके प्रूफ पढ़नेमें और अनुक्रमणिका बनानेमें मेरी सहायता की है। मैं इन सब महानुभावोंका हृदयसे आभार मानता हूँ। मुनि मोहनलाल सेंट्रल जैन लायब्रेरी, हीराचन्द गुमानजी जैन बोर्डिंग लाइब्रेरी, ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन तथा न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेसके अध्यक्षोंने मुझे अपना पूर्ण सहयोग दिया है। इस संस्करणके तैयार करनेमें प्रो. आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुवकी स्याद्वादमंजरी तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंसे जो मुझे सहायता मिली है, मैंने उसका यथास्थान उल्लेख किया है। मैं इन सब विद्वानोंका आभार मानता हूँ।

कुवेलवाग,
तारदेव बम्बई
२०–८–३५

जगदीशचन्द्र जैन

ग्रंथ और ग्रंथकार

हेमचन्द्र

हेमचन्द्र आचार्य श्वेताम्बर परम्परामें महान प्रतिभाशाली एक असाधारण विद्वान हो गये हैं। हेमचन्द्राचार्यका जन्म ई. स. १०७८ में गुजरातके धन्धुका ग्राममें मोढ़ वणिक् जातिमें हुआ था। हेमचन्द्रके जन्मका नाम चंगदेव अथवा चांगोदेव था। इनके पिताका नाम चच्च, चाच अथवा चाचिग, और माताका नाम पाहिनी अथवा चाहिणी था। एक बारकी बात है, कि देवचन्द्र नामके एक जैन साधु धंधुकामें आये। उस समय चंगदेवकी अवस्था केवल पांच वर्षकी थी। पाहिनी अपने पुत्रको लेकर जिनमंदिरके दर्शन करनेके लिये गई। देवचन्द्र भी इसी मंदिरमें ठहरे थे। जिस समय पाहिनी जिन प्रतिबिम्बकी प्रदक्षिणा दे रही थी, उस समय चंगदेव देवचन्द्र महाराजके पास आकर बैठ गये। आचार्य चंगदेवके शरीरपर असाधारण चिह्न देखकर आश्चर्यचकित हुए, और उन्होंने चंगदेवके घर जाकर पाहिनीसे उसके पुत्रको जैन साधु संघमें दीक्षित करनेकी अनुमति मांगी[1]। पाहिनीने गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य की, और चंगदेवको देवचन्द्र आचार्यके सुपुर्द कर दिया। जब चंगदेवके पिता बाहरसे लौटे, इस घटनाको सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। अन्तमें सिद्धराजके तत्कालीन जैन मंत्री उदयनने चंगदेवके पिताको शांत किया, तथा चंगदेवका विधिविधानपूर्वक दीक्षा-संस्कार हो गया। दीक्षाके पश्चात् चंगदेवका नाम सोमचन्द्र रक्खा गया। प्रतिभाशाली सोमचन्द्रने शीघ्र ही तर्क, लक्षण, साहित्य और आगम इन चारों विद्याओंका पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। देवचन्द्रसूरिने अपने शिष्यका अगाध पांडित्य देखकर सोमचन्द्रको सूरिकी उपाधिसे विभूषित किया, और अब सोमचन्द्र हेमचन्द्रसूरिके नामसे कहे जाने लगे।

एक बार हेमचन्द्र आचार्य विहार करते करते गुजरातकी राजधानी अणहिल्लपुर पाटणमें पधारे। उस समय वहां महाराज सिद्धराज जयसिंह राज्य करते थे। सिद्धराजने हेमचन्द्र आचार्यको राजसभामें आमंत्रित किया, और हेमचन्द्रके अगाध पाण्डित्यको देखकर बहुत मुग्ध हुए। हेमचन्द्र अणहिल्लपुरमें ही रहने लगे। सिद्धराजने कोई अच्छा व्याकरण न देखकर

---

१ सोमप्रभसूरिके अनुसार चंगदेवने स्वयं ही देवचन्द्रसूरिके उपदेश सुनकर उनका शिष्य होनेकी इच्छा प्रगट की, और वे देवचन्द्रसूरिके साथ साथ फिरने लगे। देवचन्द्र भ्रमण करते करते जब खंभातमें आये, वहांपर चंगदेवके मामा नेमिचन्द्रने चंगदेवके माता पिताको समझाया, और देवचन्द्रसूरिने चंगदेवको दीक्षा दी।

हेमचन्द्रसे कोई व्याकरण बनानेको कहा। सिद्धराजके प्रार्थना करनेपर हेमचन्द्रने गुजरातके लिये सिद्धहेमशब्दानुशासन नामके व्याकरणकी रचना की। इस गुजरातके प्रधान व्याकरणके समाप्त होनेपर यह व्याकरण राजाके हाथीपर रखकर राज दरबारमें लाया गया। सिद्धराज शैवधर्मी थे। एक बार हेमचन्द्र सिद्धराजके साथ सोमनाथके मंदिरमें गये। हेमचन्द्रने निम्न श्लोकोंसे शिव भगवानको नमस्कार किया, और अपने हृदयकी विशालताका परिचय दिया—

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥
यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते ॥

हेमचन्द्रके उपदेशसे सिद्धराजकी जैनधर्मके प्रति प्रीति उत्पन्न हुई, और इसके फल-स्वरूप सिद्धराजने पाटणमें 'रायविहार' और सिद्धपुरमें 'सिद्धविहार' नामक चौबीस जिन प्रतिमावाले मन्दिर बनवाये। सिद्धराजके समय हेमचन्द्र केवल अपने विद्या-वैभवके कारण सत्कारके पात्र हुए थे। परन्तु सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपाल हेमचन्द्रको राजगुरुकी तरह मानते थे। हेमचन्द्रके उपदेशसे कुमारपालने अपने राज्यभरमें देव-देवियोंके ऊपर की जानेवाली प्राणियोंकी हिंसाका, और मांस, मद्य, द्यूत, शिकार आदि दुर्व्यसनोंका रोकनेकी घोषणा कराई, और जैनधर्मके सिद्धांतोंका अधिकाधिक प्रचार किया।

हेमचन्द्र चारों विद्याओंके समुद्र थे, और अपने असामान्य विद्या वैभवके कारण ही कलिकालसर्वज्ञके नामसे प्रख्यात थे। मल्लिषेण हेमचन्द्रका महान् पूज्य दृष्टिसे स्मरण करते हैं, और उन्हें चार विद्याओं सम्बन्धी साहित्यके निर्माण करनेमें साक्षात् ब्रह्माकी उपमा देते हैं। सिद्धहेम-शब्दानुशासनके अतिरिक्त हेमचन्द्रने तर्क साहित्य, छन्द, योग, नीति आदि विविध विषयोंपर अनेक ग्रंथोंकी रचना करके जैन साहित्यको खूब ही पल्लवित बनाया है। कहा जाता है, कि सब मिलाकर हेमचन्द्रने साढ़े तीन करोड़ श्लोकोंकी रचना की है। हेमचन्द्रके मुख्य ग्रंथ निम्न प्रकार हैं—

१ प्राकृत और अपभ्रंश व्याकरण—प्राकृतव्याकरण।

२ महाकाव्य (संस्कृत और प्राकृत)—द्व्याश्रय महाकाव्य, इसमें भट्टिकाव्यकी तरह प्रत्येक श्लोकके दो अर्थ निकलते हैं।

---

१ एक विद्वान्ने इस व्याकरणकी प्रशंसा निम्न श्लोकसे की था—

भ्रात: संवृणु पाणिनीप्रलपितं कातन्त्रकन्था वृथा
मा कार्षीः कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चान्द्रेण किम्।
किं कण्ठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि
श्रूयन्ते यदि तावदर्थमधुराः श्रीसिद्धहेमोक्तयः ॥ जैन साहित्यनो इतिहास पृ. २५४।

३ कोष—अभिधानचिंतामणि–सवृत्ति [हर्मानाममाला], अनेकार्थसंग्रह, देशीनाममाला–सवृत्ति और निघटुशेष।

४ अलंकार—काव्यानुशासन–सवृत्ति।

५ छंद—छंदोनुशासन–सवृत्ति।

६ न्याय—प्रमाणमीमांसा [अपूर्ण], अन्ययोगव्यवच्छेदिका और अयोगव्यवच्छेदिका।

७ योग—योगशास्त्र-सवृत्ति [अध्यात्मोपनिषद्]।

८ स्तुति—वीतरागस्तोत्र।

९ चरित—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित।

इन ग्रंथोंके अतिरिक्त हेमचन्द्रने और भी बहुतसे ग्रंथोंका निर्माण किया है। निस्सन्देह हेमचन्द्र भारतके एक देदीप्यमान रत्न थे। हेमचन्द्र आचार्यके बिना जैन साहित्य ही नहीं बल्कि गुजरात भरका साहित्य सूना कहा जाता है।

अन्ययोग और अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिकायें

दार्शनिक विचारोंको संस्कृत भाषाके पद्योंमें लिखनेकी रीति भारतवर्षमें बहुत समयसे चली आती है। उपलब्ध भारतीय साहित्यमें सर्वप्रथम विज्ञानवादी बौद्ध आचार्य वसुबंधुद्वारा विज्ञानवादकी सिद्धिके लिये बीस श्लोकप्रमाण विंशिका, और तीस श्लोकप्रमाण त्रिंशिकाकी रचना देखनेमें आती है। जैन साहित्यमें सबसे पहले प्रसिद्ध जैन दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकरने द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाओंकी रचना की। हरिभद्रने भी विंशतिविंशिकाओंको बनाया है। हेमचन्द्रने सिद्धसेनकी द्वात्रिंशिकाओंका अनुकरण करके ही सरल और अत्यन्त मार्मिक भाषामें अन्ययोगव्यवच्छेद और अयोगव्यवच्छेद नामकी दो द्वात्रिंशिकाओंकी रचना की है।

हेमचन्द्रकी उक्त दोनों द्वात्रिंशिकायें महावीर भगवानकी स्तुतिरूप हैं। इन दोनोंमें बत्तीस बत्तीस श्लोक हैं। इनमें इकत्तीस श्लोक उपजाति और अन्तका एक श्लोक शिखरिणी छन्दमें लिखे गये हैं। अन्ययोगव्यवच्छेदिकामें अन्य दर्शनोंमें दूषणोंका प्रदर्शन किया गया है। इसमें आदिके तीन और अन्तके तीन श्लोकोंमें भगवानकी स्तुति, सतरह श्लोकोंमें न्यायवैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, बौद्ध और चार्वाकदर्शनोंकी समीक्षा, तथा नौ श्लोकोंमें स्याद्वादकी सिद्धि की गई है—

१—स्तुतिरूप छह श्लोकोंमें भगवानके अतिशय, उनके यथार्थवाद, नयमार्ग, और निष्पक्ष शासनका वर्णन करते हुए अन्तमें जिन भगवानके द्वारा ही अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए जगतकी रक्षाकी शक्यताका प्रतिपादन किया गया है।

२—(क) अन्य दर्शनोंके समीक्षात्मक रूप सतरह श्लोकोंमें ४–१० श्लोक तक छह श्लोकोंमें न्यायवैशेषिकोंके सामान्यविशेषवाद, नित्यानित्यवाद, ईश्वरकर्तृत्व, धर्म-धर्मिका

भेद, सामान्यका भिन्नपदार्थत्व, आत्मा और ज्ञानका भिन्नत्व, बुद्धि आदि आत्माके गुणोंके उच्छेदको मोक्ष मानना, आत्माको सर्वव्यापक मानना, तथा छल, जाति और निग्रहस्थानमें मुक्ति मानना—इन सिद्धांतोंकी समालोचना की गई है।

(ख) ११–१२ वें श्लोकमें मीमांसकोंकी,

(ग) १३ वें श्लोकमें वेदान्तियोंके मायावादकी,

(घ) १४ वें में एकान्त सामान्य और एकान्त विशेष रूप वाच्य-वाचक भावकी,

(ङ) १५ वें में सांख्यदर्शनके सिद्धांतोंकी, तथा

(च) १६–१९ में बौद्धोंके प्रमाण और प्रमितिकी अभिन्नता, ज्ञानाद्वैत, शून्यवाद, क्षणभंगवादकी, और

(छ) २० वें श्लोकमें चार्वाकदर्शनकी समीक्षा की गई है।

३—शेष नौ श्लोकोंमें प्रत्येक वस्तुमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी सिद्धि, सकलादेश और विकलादेशसे सप्तभंगीका प्ररूपण, स्याद्वादमें विरोध आदि दोषोंका खंडन, एकान्तवादोंका खंडन, दुर्नय, नय और प्रमाणका स्वरूप, और सर्वज्ञकथित जीवोंकी अनन्तताके प्ररूपणके साथ स्याद्वादकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध की गई है।

अयोगव्यवच्छेदिका नामकी दूसरी द्वात्रिंशिकामें स्वपक्षकी सिद्धि की गई है। अन्ययोगव्यवच्छेदिका और अयोगव्यवच्छेदिकाके श्लोकोंका उल्लेख हेमचन्द्रके प्रमाणमीमांसावृत्ति, योगशास्त्रवृत्ति आदि ग्रंथोंमें मिलता है, इससे मालूम होता है इन ग्रंथोंके बननेसे पहले ही इन द्वात्रिंशिकाओंकी रचना हो चुकी थी। अयोगव्यवच्छेदिकामें हेमचन्द्र आचार्यने सर्वज्ञके आगमको निर्दोष सिद्ध करके जिनशासनकी महत्ताका विविध प्रकारसे बड़ी आलंकारिक भाषामें प्रतिपादन किया है। हेमचन्द्राचार्यका सुदृढ विश्वास है, कि जैनेतर आगमोंमें हिंसा आदिका विधान पाया जाता है, अतएव पूर्वापरविरोधरहित यथार्थवादी जिन भगवानका हितोपदेशी शासन ही प्रामाणिक हो सकता है। जिन शासनके सर्वोत्कृष्ट और कल्याणरूप होने पर भी जो लोग जिन शासनकी उपेक्षा करते हैं, यह उन लोगोंके दुष्कर्मोंका ही फल समझना चाहिये। हेमचन्द्र घोषणा करके कहते हैं कि वीतरागको छोड़कर दूसरा कोई देव, और अनेकान्तको छोड़कर दूसरा कोई न्यायमार्ग नहीं है—

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे ।
न वीतरागात्परमस्ति दैवतं न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥

अन्तमें हेमचन्द्र जिनदर्शनके प्रति अपना पक्षपात और जैनेतर दर्शनोंके प्रति द्वेष भावका निराकरण करते हुए अपने समदर्शीपनकी भावनाको व्यक्त करते हैं, और यथार्थवाद गुणके कारण जिनशासनकी ही महत्ता सिद्ध करते हैं—

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु ।
यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्म ॥

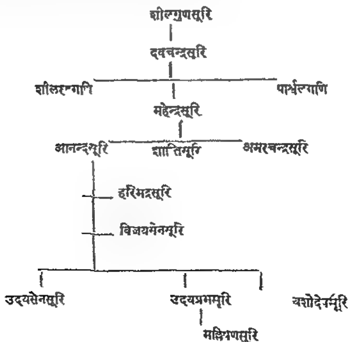
टीकाकार मल्लिषेण

मल्लिषेण नामके अनेक जैन आचार्य हो गये हैं। हेमचन्द्रकी अन्ययोगव्यवच्छेदिकाके ऊपर स्याद्वादमंजरी नामकी टीका लिखनेवाले प्रस्तुत मल्लिषेणसूरि श्वेताम्बर विद्वान् हैं। मल्लिषेणने अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिकाकी टीकाके अतिरिक्त अन्य कौनसे ग्रंथोंकी रचना की है, ये भारतके कौनसे प्रदेशके रहनेवाले थे, आदि बातोंके संबंधमें कुछ विशेष पता नहीं लगता। स्याद्वादमंजरीके अंतमें दी हुई प्रशस्तिमें केवल इतना ही मालूम होता है कि नागेन्द्रगच्छीय

१ पं. नाथूराम प्रेमीजीने अपनी विद्वद्रत्नमाला (प्रथम भाग) में मल्लिषेण नामक दो दिगम्बर विद्वानोंका उल्लेख किया है। एक मल्लिषेण उभयभाषाचक्रवर्ती कहे जाते थे, जो संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके महाकवि थे। अब तक इनके महापुराण, नागकुमार महाकाव्य, और सज्जनचित्तवल्लभ नामके तीन ग्रंथोंका पता लगा है। दूसरे मल्लिषेण ' मलधारिन् ' के नामसे प्रसिद्ध थे। ये मल्लिषेण शक संवत् १०५० में फाल्गुनकृष्ण तृतीयाके दिन श्रवणबेलगुलमें समाधिस्थ हुए थे। प्रवचनसारटीका, पंचास्तिकाय टीका, ज्वालिनीकल्प, पद्मावतीकल्प, वज्रपंजरविधान, ब्रह्मविद्या और आदिपुराण नामक ग्रंथ भी मल्लिषेण आचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये ग्रंथ कौनसे मल्लिषेणने रचे थे।

२ नागेन्द्रगच्छगोविन्दवक्षोऽलंकारकौस्तुभाः।
ते विश्ववन्द्या नन्द्यासुरुदयप्रभसूरयः॥
श्रीमल्लिषेणसूरिभिरकारि तत्पदगगनदिनमणिभिः।
वृत्तिरियं मनुरविमितशाकाब्दे दीपमहसि शनौ॥
श्रीजिनप्रभसूरिणा साहाय्योद्भिन्नसौरभा।
श्रुतावुत्तंसतु सतां वृत्तिः स्याद्वादमंजरी॥

३ मोतीलाल लाधाजीने आर्हतमतप्रभाकर पूनासे प्रकाशित स्याद्वादमंजरीकी प्रस्तावनामें नागेन्द्रगच्छके आचार्योंकी परम्परा निम्न प्रकारसे दी है।—



उदयप्रभसूरि[1] मल्लिषेणके गुरु थे, तथा शक संवत् १२१४ (ई. स. १२९२) में दीपमालिकाको शनिवारके दिन जिनप्रभसूरिकी[2] सहायतासे मल्लिषेणने स्याद्वादमंजरीको समाप्त किया है।

मल्लिषेणसूरि अपने समयके एक प्रतिभाशाली विद्वान् थे। मल्लिषेण न्याय, व्याकरण और साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने जैनन्याय और जैनसिद्धांतोंके गंभीर अध्ययन करनेके साथ न्याय-वैशेषिक, सांख्य, पूर्वमीमांसा, वेदान्त और बौद्धदर्शनके मौलिक ग्रंथोंका विशाल अध्ययन किया था। मल्लिषेणकी विषय-वर्णनकी शैली सुस्पष्ट, प्रसाद गुणसे युक्त और हृदयको स्पर्श करनेवाली है। न्याय और दर्शनशास्त्रके कठिनसे कठिन विषयोंको अत्यंत सरल और हृदयग्राही भाषामें रखकर पाठकोंको मुग्ध करनेकी कलामें मल्लिषेण अत्यंत कुशल थे। इसीलिये स्याद्वादमंजरी—मल्लिषेणकी एक मात्र उपलब्ध रचना—न्यायका ग्रंथ कहे जानेकी अपेक्षा 'साहित्यका एक अंश' (Piece of literature) कहा जाता है। यद्यपि रत्नप्रभसूरिकी स्याद्वादरत्नाकरावतारिका भी साहित्यके ढंगपर ही लिखी गई है, परन्तु रत्नाकरावतारिकामें समासोंकी दीर्घता और अर्थ-काठिन्य होनेके कारण उसमें भाषाकी अत्यन्त जटिलता आ गई है[3]। इस लिये एक ओर सन्मतितर्क, अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि जैन न्यायके गहन वनोंमेंसे, और दूसरी ओर स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका जैसी विकट और घोर अटवीमेंसे निकलकर स्याद्वादमंजरीको विश्राम करनेका सर्वांगसुन्दर आधुनिक धाम कहा जा सकता है। यहांपर प्रत्येक दर्शनके महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंका बहुत संक्षेपमें अत्यंत सरल, स्पष्ट और मनोरंजक भाषामें वर्णन किया गया है।

---

1 उदयप्रभसूरिने धर्माभ्युदयमहाकाव्य, आरंभसिद्धि, उपदेशमालाकर्णिकावृत्ति आदि ग्रंथोंकी रचना की है।

2 जिनप्रभसूरिने तीर्थकल्प अजितशान्तिस्तव आदि ग्रंथ बनाये हैं।

३ उदाहरणके लिये—"इह हि सुलभ्यमानाऽक्षुद्रक्षोदीयोऽक्षरक्षारनिरन्तरे, तत्र तत्र दृश्यमानस्याद्वादमहामुद्रामुद्रितनिखिलप्रमेयमहासमुद्गतगम्भीरगर्भितसर्वसौभाग्यभाजने ... उपरिच्छिद्रसन्दोहगाढलास ... निखिल ..., निरवमनोज्ञमहायानपात्रव्याख्यानपरायणपूर्वप्राप्यमाणमासुररत्नविशेषे, क्वचन वचनरचनाऽनवद्यगद्यपरम्पराप्रवालजटिले, क्वचन सुकुमारकान्तारम्भ ... क्वचिदनेकान्तवादोपकल्पितानल्पविकल्प ... गम्भीरावर्तवत्मवलिविलम्बितचक्रवाले, क्वचिदपगतावशेषदोषानुमानाभिधानोद्धतमानाभिमानपाठीनपुच्छच्छटाच्छोटोच्छलच्छीकरनिकरतारतम्यसमानमार्तण्डमण्डलप्रचण्डच्छमत्कारे, क्वापि सांविकप्रथमप्रथिमप्रथमानसंसारसंविज्ञानमन्दमानसमणिफणीन्द्रभीषणे सहृदयसैद्धान्तिकतार्किकवैयाकरणकविचक्रचक्रवर्तिसुविहितसुगृहीतनामधेयास्मद्गुरुश्रीदेवसूरिभिर्विरचित स्याद्वादरत्नाकरे" स्याद्वादरत्नावतारिका पृ. २।

उपाध्याय यशोविजयजीने स्याद्वादमंजरीके ऊपर स्याद्वादमंजूषा नामकी वृत्ति लिखी है[1]। स्याद्वादमंजरीका उल्लेख माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें किया है[2]।

मल्लिषेण हरिभद्रसूरिकी कोटिके सरल प्रकृतिके उदार और मध्यस्थ विद्वान थे। सिद्धसेन आदि जैन विद्वानोंकी तरह मल्लिषेण भी 'सम्पूर्ण जैनेतर दर्शनोंके समूहको जैनदर्शन' कहकर 'अजगजन्याय' का उपयोग करते हैं। अन्य दर्शनोंके विद्वानोंको पशु, वृषभ आदि असभ्य शब्दोंसे न कहकर वेदान्तियोंको सम्यग्दृष्टि, व्यासको ऋषि, कपिलको परमर्षि, उदयनको प्रामाणिकप्रकाण्ड रूपसे उल्लेख करना, तथा श्वेताम्बर होते हुए भी समंतभद्र, विद्यानन्द आदि दिगम्बर विद्वानोंके निःसंकोच भावसे उद्धरण देना मल्लिषेणकी धार्मिक सहिष्णुताके साथ उनके समदर्शीपनेकी भावनाको स्पष्ट रूपसे प्रमाणित करता है। स्याद्वादमंजरीमें सर्वज्ञसिद्धिकी चर्चाके प्रसंगपर भी मल्लिषेण स्त्रीमुक्ति और केवलिमुक्ति जैसे दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायके विवादस्थ प्रश्नोंके विषयमें मौन रहते हैं, इससे भी प्रतीत होता है, कि अन्य दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्योंकी तरह मल्लिषेणको साम्प्रदायिक चर्चाओंमें कोई भी रस नहीं था। अनेक वृक्षोंसे पुष्पोंको चुनने समान अनेक दर्शन संबंधी शास्त्रोंसे प्रमेयोंको चुन चुनकर निस्सन्देह मल्लिषेणसूरिने 'अकृत्रिमबहुमति' वाली स्याद्वादमंजरी नामकी माला गूंथकर जैनदर्शनके साहित्यको खूब ही अलंकृत बनाया है।

स्याद्वादमंजरीका विहंगावलोकन

श्लोक १–३

ये श्लोक भगवानकी स्तुतिरूप हैं। इन श्लोकमें चार अतिशयों सहित भगवानके यथार्थवादका प्ररूपण करते हुए भगवानके शासनकी सर्वोत्कृष्टता बताई गई है।

---

१ मोहनलाल दुलीचंद देसाईने अपने 'जैनसाहित्यनो इतिहास' नामक पुस्तकके ६४५ पृष्ठपर उपाध्याय यशोविजयकी उपलब्ध अप्रसिद्ध कृतियोंमें इस वृत्तिका उल्लेख किया है।

२ यदवोचदाचार्य स्याद्वादमंजर्याम्–

अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम्।
एकदेशविशिष्टोऽर्थो नयस्य विषयो मतः॥
न्यायानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तौ श्रुतवर्त्मनि।
सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वस्तु श्रुतमुच्यते॥
अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्
यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः।
नयानशेषानविशेषमिच्छन्
न पक्षपाती समयस्तथार्हतः॥ सर्वदर्शनसंग्रह–आर्हतदर्शन।

उक्त तीन श्लोकोंमें पहलेके दो श्लोक सिद्धसेनके न्यायावतारके, और अन्तिम श्लोक हेमचन्द्रकी अन्ययोगव्यवच्छेदिकाका है। मालूम नहीं ये श्लोक स्याद्वादमंजरीके कर्ताके नामसे कैसे [illegible]

श्लोक ४-१०

इन छह श्लोकोंमें न्याय-वैशेषिकोंके निम्न सिद्धान्तोंपर विचार किया गया है—

(१) सामान्य और विशेष भिन्न पदार्थ नहीं हैं।

(२) वस्तुको एकान्त नित्य अथवा एकान्त-अनित्य मानना न्यायसंगत नहीं है।

(३) एक, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, स्वतंत्र और नित्य ईश्वर जगतका कर्ता नहीं हो सकता।

(४) धर्म-धर्मीमें समवाय संबंध नहीं बन सकता।

(५) सत्ता (सामान्य) भिन्न पदार्थ नहीं है।

(६) ज्ञान आत्मासे भिन्न नहीं है।

(७) आत्माके बुद्धि आदि गुणोंके नाश होनेको मोक्ष नहीं कह सकते।

(८) आत्मा सर्वव्यापक नहीं हो सकती।

(९) छल, जाति, निग्रहस्थान आदि तत्त्व मोक्षके कारण नहीं हो सकते।

तथा—

(क) तम (अंधकार) अभावरूप नहीं है, बल्कि वह आकाशकी तरह स्वतंत्र द्रव्य है, और वह पौद्गलिक है।

(ख) 'अप्रच्युत, अनुत्पन्न और स्थिरैकस्वभाव' नित्यका लक्षण मानना ठीक नहीं। 'पदार्थके स्वरूपका नाश नहीं होना' ही नित्यका लक्षण ठीक हो सकता है।

(ग) किरणें गुणरूप नहीं हैं, उन्हें तैजस पुद्गलरूप मानना चाहिये।

(घ) नैयायिकोंके प्रमाण, प्रमेय आदिके लक्षण दोषपूर्ण हैं।

इसके अतिरिक्त इन श्लोकोंमें—

(अ) जैनदृष्टिसे आकाश आदिमें नित्यानित्यत्व,

(ब) पतंजलि, प्रशस्तकार और बौद्धोंके अनुसार वस्तुओंका नित्यानित्यत्व,

(स) अनित्यैकान्तवादी बौद्धोंके क्षणिकवादमें दूषण,

(ड) वैदिक संहिता, स्मृति आदिके वाक्योंमें पूर्वापरविरोध, तथा

(इ) केवलिसमुद्घात अवस्थामें जैनसिद्धान्तके अनुसार आत्म-व्यापकताकी संगतिका प्ररूपण किया गया है।

श्लोक ११-१२

इन श्लोकोंमें पूर्वमीमांसकोंके निम्न सिद्धान्तोंपर विचार किया गया है—

(१) वेदोंमें प्रतिपादित हिंसा धर्मका कारण नहीं हो सकती।

(२) श्राद्ध करनेसे पितरोंकी तृप्ति नहीं होती।

(३) अपौरुषेय वेदको प्रमाण नहीं मान सकते।

(४) ज्ञानको स्वपरप्रकाशक न माननेसे अनेक दूषण आते हैं, इस लिये ज्ञानको स्व और परका प्रकाशक मानना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इन श्लोकोमे—

(क) जिन मदिरके निर्माण करनेका विधान,

(ख) साख्य, वेदान्ती ओर व्यास ऋषिका याज्ञिक हिंसाका निरोध, तथा

(ग) ज्ञानको अनुव्यवसायगम्य माननेवाले न्यायवैशेषिकोंका खडन किया गया है।

श्लोक १३

इस श्लोकमें ब्रह्माद्वैतवादियोंके मायावादका खडन किया गया है। यहापर प्रत्यक्ष प्रमाणको विधि और निषेध दोनों रूप प्रतिपादन किया है।

श्लोक १४

इस श्लोकमे एकान्त सामान्य और एकान्त विशेष वाच्य–वाचक भावका खडन करते हुए कथचित् सामान्य ओर कथचित् विशेष वाच्य–वाचक भावका समर्थन किया गया है। इस श्लोकमे निम्न महत्वपूर्ण विषय आये है—

(१) केवल द्रव्यास्तिकनय अथवा सग्रहनयको माननेवाले अद्वैतवादी, साख्य और मीमासकोंका सामान्यैकान्तवाद मानना युक्तियुक्त नहीं है।

(२) केवल पर्यायास्तिकनयको माननेवाले बौद्धोंका विशेषैकान्तवाद ठीक नहीं है।

(३) केवल नैगमनयको स्वीकार करनेवाले न्याय–वैशेषिकोंका स्वतत्र ओर परस्पर निरपेक्ष सामान्य-विशेषवाद मानना ठीक नहीं है।

तथा—

(क) शब्द आकाशका गुण नहीं है, वह पौद्गलिक है, ओर सामान्य-विशेष दोनों रूप है।

(ख) आत्मा भी कथचित् पौद्गलिक है।

(ग) अपोह, सामान्य अथवा विधिको शब्दार्थ नहीं मान सकते।

श्लोक १५

इस श्लोकमे साख्योकी निम्न मान्यताओंकी समीक्षा की गई है—

(१) चित्शक्ति (पुरुष) को ज्ञानसे शून्य मानना परस्पर विरुद्ध है।

(२) बुद्धि (महत्) का जड मानना ठीक नहीं है। अहकारको भी आत्माका ही गुण मानना चाहिये, बुद्धिका नहीं।

(३) सत्कार्यवाद माननेवाले साख्य लोगोंका आकाश आदिका पाच तन्मात्राओंसे उत्पत्ति मानना असगत है।

(४) बध पुरुषके ही मानना चाहिये, प्रकृतिके नहीं।

(८) वाक्, पाणि आदिको पृथक् इन्द्रिय नहीं कह सकते, इस लिये पांच ही इन्द्रियां माननी चाहिये।

(९) केवल ज्ञान मात्रसे मोक्ष नहीं हो सकता।

श्लोक १६–१९

इन श्लोकोंमें बौद्धोंके निम्न मुख्य सिद्धान्तोंपर विचार किया गया है—

(१) प्रमाण और प्रमाणके फलको सर्वथा अभिन्न न मानकर कथंचित् भिन्नाभिन्न मानना चाहिये।

(२) सम्पूर्ण पदार्थोंको एकान्त रूपसे क्षणधर्मी न मानकर उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित स्वीकार करना चाहिये।

(३) पदार्थोंके ज्ञानमें तदुत्पत्ति और तदाकारताको कारण न मानकर क्षयोपशम रूप योग्यताको ही कारण मानना चाहिये।

(४) विज्ञानवादी बौद्धोंका विज्ञानाद्वैत मानना ठीक नहीं है।

(५) प्रमाता, प्रमेय आदि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे सिद्ध होते हैं, इस लिये माध्यमिक बौद्धोंका शून्यवाद युक्तिसंगत नहीं है।

(६) बौद्धोंके क्षणभंगवादमें अनेक दोष आते हैं, इस लिये क्षणभंगवादका सिद्धान्त दोष पूर्ण है।

(७) क्षणभंगवादकी सिद्धिके लिये नाना क्षणोंकी परम्परारूप वासना अथवा सन्तानको मानना भी ठीक नहीं बनता।

तथा—

(क) नैयायिकोंके प्रमाण और प्रमितिमें एकान्त भेद नहीं बन सकता।

(ख) आत्माकी सिद्धि।

(ग) सर्वज्ञकी सिद्धि।

श्लोक २०

इस श्लोकमें चार्वाक मतके सिद्धान्तोंका खण्डन किया गया है।

श्लोक २०–२९

इन श्लोकोंमें स्वपक्षका समर्थन करते हुए स्याद्वादकी सिद्धि की गई है। इन श्लोकोंमें निम्न सिद्धांतोंका प्रतिपादन किया गया है—

(१) प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे युक्त है। द्रव्यकी अपेक्षा वस्तुमें ध्रौव्य और पर्यायकी अपेक्षा सदा उत्पाद और व्यय होता रहता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य परस्पर सापेक्ष हैं।

(२) आत्मा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आदि सम्पूर्ण द्रव्योंमें नाना अपेक्षाओंसे नाना धर्म रहते है, अतएव प्रत्येक वस्तुको अनन्तधर्मात्मक मानना चाहिये। जो वस्तु अनन्तधर्मात्मक नहीं होती, वह वस्तु सत् भी नहीं होती।

(३) प्रमाणवाक्य और नयवाक्यसे वस्तुमें अनन्त धर्मोंकी सिद्धि होती है। प्रमाणवाक्यको सकलादेश और नयवाक्यको विकलादेश कहते हैं। पदार्थके धर्मोंका काल, आत्मरूप, अर्थ, सबंध, उपकार गुणिदेश, संसर्ग और शब्दकी अपेक्षा अभेदरूप कथन करना सकलादेश, तथा काल, आत्मरूप आदिकी भेद विवक्षासे पदार्थोंके धर्मोंका प्रतिपादन करना विकलादेश है। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्तिअवक्तव्य, स्यान्नास्ति-अवक्तव्य, और स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्यके भेदसे सकलादेश और विकलादेश प्रमाणसप्तभंगी और नयसप्तभंगीके सात सात भेदोंमें विभक्त है।

(४) स्याद्वादियोंके मतमें स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा वस्तुमे अस्तित्व है, और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा नास्तित्व है। जिस अपेक्षासे वस्तुमें अस्तित्व है, उसी अपेक्षासे वस्तुमें नास्तित्व नहीं है। अतएव सप्तभंगी नयमें विरोध, वैयधिकरण्य, अनवस्था, संकर, व्यतिकर, संशय, अप्रतिपत्ति और अभाव नामक दोष नहीं आ सकते।

(५) द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा वस्तु नित्य, सामान्य, अवाच्य, और सत् है, तथा पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा अनित्य, विशेष, वाच्य और असत् है। अतएव नित्यानित्यवाद, सामान्यविशेषवाद, अभिलाप्यानभिलाप्यवाद तथा सदसद्वाद इन चारों वादोंका स्याद्वादमें समावेश होजाता है।

(६) नयरूप समस्त एकांतवादोंका समन्वय करनेवाला स्याद्वादका सिद्धांत ही सर्वमान्य हो सकता है।

(७) भावाभाव, द्वैताद्वैत, नित्यानित्य आदि एकांतवादोंमें सुख-दुख, पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष आदिकी व्यवस्था नहीं बनती।

(८) वस्तुके अनन्त धर्मोंमेंसे एक समयमें किसी एक धर्मकी अपेक्षा लेकर वस्तुके प्रतिपादन करनेको नय कहते हैं। इस लिये जितने तरहके वचन होते हैं, उतने ही नय हो सकते हैं। नयके एकसे लेकर संख्यात भेद तक हो सकते हैं। सामान्यसे नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये सात भेद किये जाते हैं। न्यायवैशेषिक केवल नैगमनयके, अद्वैतवादी और सांख्य केवल संग्रहनयके, चार्वाकलोग केवल व्यवहारनयके, बौद्ध लोग केवल ऋजुसूत्रनयके, और वैयाकरण केवल शब्दनयके माननेवाले हैं। प्रमाण

सम्पूर्ण नयरूप होता है। नयवाक्योंमें स्यात् शब्द लगाकर बोलनेको प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे प्रमाणके दो भेद होते हैं।

(९) जितने जीव व्यवहार राशिसे मोक्ष जाते हैं, उतने ही जीव अनादि निगोदकी अव्यवहार राशिसे निकलकर व्यवहार राशिमें आ जाते हैं, और यह अव्यवहार राशि आदि रहित है, इस लिये जीवोंके सतत मोक्ष जाने रहनेपर भी यह संसार जीवोंसे कभी खाली नहीं हो सकता।

(१०) पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिमें जीवत्वकी सिद्धि।

(११) प्रत्येक दर्शन नयवादमें गर्भित होता है। जिस समय नयरूप दर्शन परस्पर निरपेक्ष भावसे वस्तुका प्रतिपादन करते हैं, उस समय ये दर्शन परसमय कहे जाते हैं। जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियां एक समुद्रमें जाकर मिलती हैं, उसी तरह अनेकांत दर्शनमें सम्पूर्ण जैनेतर दर्शनोंका समन्वय होता है इस लिये जैनदर्शन स्वसमय है।

श्लोक ३०-३२

इन श्लोकोंमें महावीर भगवानकी स्तुतिका उपसंहार करते हुए अनेकांतवादसे ही जगतका उद्धार होनेकी शक्यताका प्रतिपादन किया गया है।

जैनदर्शनमें स्याद्वादका स्थान

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ॥ (अमृतचन्द्र)

स्याद्वादका मौलिक रूप और उसका रहस्य—विज्ञानने इस बातको भले प्रकार सिद्ध कर दिया है, कि जिस पदार्थको हम नित्य और ठोस समझते हैं, वह पदार्थ बड़े वेगसे गति कर रहा है, जो हमें काले, पीले, लाल आदि रंग दिखाई पड़ते हैं, वे सब सफेद रंगके रूपान्तर हैं, जो सूर्य हमें छोटासा और बिलकुल पास दिखाई देता है, वह पृथिवी मंडलसे साढ़े बारह लाख गुना बड़ा और यहाँसे नौ करोड़ तीस लाख मीलकी ऊँचाईपर है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है, कि जब हम अनन्त समय बीत जानेपर भी ब्रह्माण्डकी छोटीसे छोटी वस्तुओंका भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके, तो जिसको हम दार्शनिक भाषामें पूर्णसत्य (Absolute) कहते हैं, उसका साक्षात्कार करना कितना दुष्कर होना चाहिये। भारतके प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंने तत्त्वज्ञान संबंधी इस रहस्यका ठीक ठीक अनुभव किया था। इसीलिये जब कभी आत्मा, परब्रह्म, पूर्णसत्य आदिके विषयमें पूर्वकालकी परिषदोंमें प्रश्नोंकी चर्चा उठती थी, तो 'नैषा तर्केण मतिरापनेया (कठ), नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन (मुण्डक), सव्वे सरा नियट्टंति तक्का तत्थ न विज्जइ (आचारांग), परमार्थो हि आर्याणां तूष्णींभावः (चन्द्रकीर्ति)—वह केवल अनुभवगम्य है, वह वाणी और मनके अगोचर है, वहाँ जिह्वा रुक जाती है, और तर्क काम नहीं करती, वास्तवमें तूष्णींभाव ही परमार्थ सत्य है, आदि वाक्योंसे इन शंकाओंका समाधान किया जाता था। इसका मतलब यह नहीं, कि भारतीय ऋषि अज्ञानवादी थे, अथवा उनको पूर्णसत्यका यथार्थ ज्ञान नहीं था। किन्तु इस प्रकारके समाधान करनेसे उनका यही अभिप्राय था, कि पूर्णसत्य तक पहुँचना तलवारकी धार पर चलनेके समान है, अतएव इसकी प्राप्तिके लिये अधिकसे अधिक साधनाकी आवश्यकता है। वास्तवमें जितना जितना हम पदार्थोंका विचार करते हैं, उतने ही पदार्थ विशीर्यमाण दृष्टिगोचर होते हैं। महर्षि सुकरातके शब्दोंमें, हम जितना जितना शास्त्रोंका अवलोकन करते हैं, हमें उतना ही अपनी मूर्खताका अधिकाधिक आभास होता है।[1]

जैनदर्शनका स्याद्वाद भी इसी तत्त्वका समर्थन करता है। जैन दार्शनिकोंका सिद्धांत है, कि मनुष्यकी शक्ति बहुत अल्प है, और बुद्धि बहुत परिमित है। इस लिये हम अपनी छद्मस्थ दशामें हजारों-लाखों प्रयत्न करनेपर भी ब्रह्माण्डके असंख्य पदार्थोंका ज्ञान करनेमें असमर्थ रहते हैं। हम विज्ञानको ही लेते हैं। विज्ञान अनन्त समयसे विविध रूपमें प्रकृतिका अभ्यास करनेमें जुटा है, परन्तु हम अभी तक प्रकृतिके एक अंश मात्रको भी पूर्णतया नहीं जान

---

१ पाश्चिमात्य विचारक ब्रेडले (Bradley), बर्गसन (Bergson) आदि विद्वानोंने भी सत्यको बुद्धि और तर्कके बाह्य कहकर उसे Experience और Intution का विषय बताया है।

सके। दर्शनशास्त्रकी भी यही दशा है। सृष्टिके आरम्भसे आज तक अनेक ऋषि-महर्षियोंने तत्त्वज्ञान सम्बन्धी अनेक प्रकारके नये नये विचारोंकी खोज की, परन्तु हमारी दार्शनिक गुत्थियां आज भी पहलेकी तरह उलझी पड़ी हुई हैं। स्याद्वाद यही प्रतिपादन करता है, कि हमारा ज्ञान पूर्णरूपसे सत्य नहीं कहा जा सकता, वह पदार्थोंकी अमुक अपेक्षाको लेकर ही होता है, इस लिये हमारा ज्ञान आपेक्षिक सत्य है। प्रत्येक पदार्थमें अनन्त धर्म हैं। इन अनन्त धर्मोंमेंसे हम एक समयमें कुछ धर्मोंका ही ज्ञान कर सकते हैं, और दूसरोंको भी कुछ धर्मोंका ही प्रतिपादन कर सकते हैं। जैन तत्त्ववेत्ताओंका कथन है, कि जिस प्रकार कई अंधे मनुष्य किसी हाथीके भिन्न भिन्न अवयवोंको हाथसे टटोलकर हाथीके उन भिन्न भिन्न अवयवोंको ही पूर्ण हाथी समझकर परस्पर लड़ते हैं, ठीक इसी प्रकार संसारका प्रत्येक दार्शनिक सत्यके अंशमात्रको ही जानता है, और सत्यके इस अंशमात्रको सम्पूर्ण सत्य समझकर परस्पर विवाद और वितण्डा खड़ा करता है। सचमुच यदि संसारके दार्शनिक अपने एकान्त आग्रहको छोड़कर अनेकान्त अथवा स्याद्वाददृष्टिसे काम लेने लगें, तो हमारे जीवनके बहुतसे प्रश्न सहजमें ही हल हो सकते हैं। वास्तवमें सत्य एक है, केवल सत्यकी प्राप्तिके मार्ग जुदा जुदा हैं। अल्प शक्तिवाले छद्मस्थ जीव इस सत्यका पूर्ण रूपसे ज्ञान करनेमें असमर्थ हैं, इस लिये उनका सम्पूर्ण ज्ञान आपेक्षिक सत्य ही कहा जाता है। यही जैन दर्शनकी अनेकान्त दृष्टिका गूढ़ रहस्य है।

यहां एक शंका हो सकती है, कि इस सिद्धान्तके अनुसार हम केवल आपेक्षिक अथवा अर्धसत्यका ही ज्ञान हो सकता है, स्याद्वादसे हम पूर्ण सत्य नहीं जान सकते। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है, कि स्याद्वाद हमें अर्ध-सत्योंके पास ले जाकर पटक देता है, और इन्हीं अर्धसत्योंको पूर्ण सत्य मान लेनेकी हमें प्रेरणा करता है। परन्तु केवल निश्चित-अनिश्चित अर्धसत्योंको मिलाकर एक साथ रख देनेसे वह पूर्णसत्य नहीं कहा जा सकता। तथा किसी न किसी रूपमें पूर्ण सत्यको माने बिना कोई भी दर्शन पूर्ण रह जानेका अधिकारी नहीं है। इस भावको भारतके प्रसिद्ध विचारक विद्वान् प्रो० राधाकिसननने निम्न प्रकारसे उपस्थित किया है—

The theory of Relativity cannot be logically sustained without the hypothesis of an absolute. The Jains admit that things are one in their universal aspect (Jati or Karana) and many in their particular aspect (Vyakti or Karya). Both these, according to them, are partial points of view. A plurality of reals is admittedly a relative truth. We must rise to the complete point of view and look at the whole with all the wealth of its attitudes. If Jainism stops short with plurality, which is at best a relative and partial truth, and does not ask whether there is any higher truth pointing to a one which particularises itself in the objects of

the world, connected with one another, vitally, essentially and immanently, it throws overboard its own logic and exalts a relative truth into an absolute one'

इस शकाका समाधान बहुत स्पष्ट है, और वह यह है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, कि स्याद्वाद पदार्थोंके जाननेकी एक दृष्टि मात्र है। स्याद्वाद स्वय अतिम सत्य नहीं है। यह हमें अन्तिम सत्य तक पहुचानेके लिये केवल मार्गदर्शकका काम करता है। स्याद्वादमे केवल व्यवहार सत्यके जाननेमें उपस्थित होनेवाले विरोधोका ही समन्वय किया जा सकता है, इसीलिये जैन दर्शनकारोंने स्याद्वादको व्यवहार सत्य माना है। व्यवहार सत्यके आगे भी जैनसिद्धातमे निरपेक्ष सत्य माना गया है, जिसे जैन पारिभाषिक शब्दोंमे केवलज्ञानके नामसे कहा जाता है। स्याद्वादमें सम्पूर्ण पदार्थोंका क्रम क्रमसे ज्ञान होता है, परन्तु केवलज्ञान सत्यप्राप्तिकी वह उत्कृष्ट दशा है, जिसमे सम्पूर्ण पदार्थ और उन पदार्थोंकी अनन्त पर्यायोका एक साथ ज्ञान होता है। स्याद्वाद परोक्षज्ञान श्रुतज्ञानमे गर्भित होता है, इस लिये स्याद्वादसे केवल इन्द्रियजन्य पदार्थ ही जाने जा सकते हैं, किंतु केवलज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष है, इस लिये केवलज्ञानमे भूत, भविष्य और वर्तमान सम्पूर्ण पदार्थ प्रतिभासित होते[3] हैं। अतएव स्याद्वाद हमें

१ इन्डियन फिलासफी जि १ पृ ३०५ ६। इसी प्रकारके विचार 'इन्डियन फिलासफिकल कॉंग्रेसके किसी अधिवेशनके समय Jain Instrumental theory of knowledge नामक लेखमे सभवत हनुमतराव एम ए ने प्रगट किये है। लेखका कुछ अश निम्न प्रकारसे है—

Its great defect lies in the fact that it (the doctrine of Syādvāda) yields to the temptation of an easy compromise without overcoming the contradictions inherent in the opposed standpoints in a higher synthesis

It takes care to show that the truths of science and of every day experience are relative and one-sided, but it leaves us in the end with the view that truth is a sum of relative truths A mere putting together of half truths definite-indefinite cannot give us the whole truth

२ स्याद्वादसे ही लोकव्यवहार चल सकता है, इस बातको सिद्धसेन दिवाकरने निम्न गाथामे व्यक्त किया है—

जेण विणा लोगस्सवि विवहारो सव्वहा न निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगतवायस्स ॥

३ समंतभद्रने आप्तमीमासामे स्याद्वाद और केवलज्ञानके भेदको स्पष्ट रूपसे निम्न श्लोकमे प्रतिपादन किया है—

तत्त्वज्ञान प्रमाण ते युगपत्सर्वभासन
[illegible]भावि च य[illegible]ज्ञान
[illegible]स्माद्वादनयसंस्कृतम्
[illegible]ज्ञानना[illegible] या सर्वस्याम्

तथा

केवल जैसे-तैसे अर्धसत्योंको ही पूर्णसत्य मान लेनेके लिये बाध्य नहीं करता। किंतु वह सत्यका दर्शन करनेके लिये अनेक मार्गोंकी खोज करता है। स्याद्वादका इतना ही कहना है, कि मनुष्यकी शक्ति बहुत सीमित है, इस लिये वह आपेक्षिक सत्यको ही जान सकता है। पहले हम व्यावहारिक विरोधोंका समन्वय करके आपेक्षिक सत्यको प्राप्त करना चाहिये। आपेक्षिक सत्यके जाननेके बाद हम पूर्णसत्य—केवलज्ञान—का साक्षात्कार करनेके अधिकारी हैं।

स्याद्वादपर एक ऐतिहासिक दृष्टि—अहिंसा और अनेकांत ये जैनधर्मके दो मूल सिद्धांत हैं। महावीर भगवानने इन्हीं दो मूल सिद्धांतोंपर अधिक भार दिया था। महावीर शारीरिक अहिंसाके पालन करनेके साथ मानसिक अहिंसा (intellectual toleration) के ऊपर भी उतना ही जोर देते हैं। महावीरका कहना था, कि उपशम वृत्तिसे ही मनुष्यका कल्याण हो सकता है, और यही वृत्ति मोक्षका साधन है। भगवानका उपदेश था, कि प्रत्येक महान् पुरुष भिन्न भिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार ही सत्यकी प्राप्ति करता है। इस लिये प्रत्येक दर्शनके सिद्धांत किसी अपेक्षासे सत्य हैं। हमारा कर्तव्य यही है, कि हम व्यर्थके वाद विवादमें न पड़कर अहिंसा और शांतिमय जीवन यापन करें। हम प्रत्येक वस्तुको प्रतिक्षण उत्पन्न होती हुई और नष्ट होती हुई देखते हैं, और साथ ही हम वस्तुके नित्यत्वका भी अनुभव करते हैं, अतएव प्रत्येक पदार्थ किसी अपेक्षासे नित्य और सत्, और किसी अपेक्षासे अनित्य और असत्, आदि अनेक धर्मोंसे युक्त है। अनेकान्तवाद सबंधी इस प्रकारके विचार प्राय प्राचीन आगम ग्रंथोंमें देखनेमें आते हैं। एक समय गौतम गणधर महावीर भगवानसे पूछते हैं 'कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है, अथवा अज्ञान स्वरूप?' भगवान उत्तर देते हैं, 'कि आत्मा नियमसे ज्ञान स्वरूप है। क्योंकि ज्ञानके बिना आत्माकी वृत्ति नहीं देखी जाती। परन्तु आत्मा ज्ञान रूप भी है और अज्ञानरूप भी है'। ज्ञातृधर्मकथा

१ सर्वनयानां जिनप्रवचनस्यैव निबन्धनत्वात्। किमस्य निबन्धनमिति चेत्। उच्यते। निबन्धनमस्य 'आया भन्ते नाणे अन्नाणे' इति स्वामी गौतमस्वामिना पृष्टो व्याकरोति 'गोयमा णाणे णियमा' अतो ज्ञानं नियमादात्मा न। ज्ञानस्यान्यव्यतिरेकेण वृत्त्यदर्शनात्। नयचक्र लिखित।

(जैनसाहित्यसंशोधक १-४ पृ १४६)

२ सुया, एगे वि अहं दुवे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं।
से केणट्ठेण भंते, एगे वि अहं जाव।
सुया, दव्वट्ठाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठाए दुवे वि अहं, पएसट्ठाए अक्खए वि अहं अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं उवओगट्ठाए अणेगभूयभावभविए वि अहं। ज्ञातृधर्मकथा ५-४६ पृ १०७।

३ यशोविजयजीने इसी गाथाको निम्न रूपमें व्यक्त किया है—

यथाह सोमिलप्रश्ने जिनः स्याद्वादसिद्धये।
द्रव्यार्थादहमेकोऽस्मि दृग्ज्ञानार्थादुभावपि ॥
अक्षयश्चाव्ययश्चास्मि प्रदेशार्थविचारतः।
अनेकभूतभावात्मा पर्यायार्थपरिग्रहात् ॥ अध्यात्मसार।

और भगवती आगममें भी एक ही वस्तुको द्रव्यकी अपेक्षा एक, ज्ञान और दर्शनकी अपेक्षा अनेक, किसी अपेक्षासे अस्ति, किसीसे नास्ति, और किसी अपेक्षासे अवक्तव्य कहा गया है। प्राचीन आगमोंमें स्याद्वादके सात भंगोंका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु यहां त्रिपदी (उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य) सिय अत्थि, सिय णत्थि, द्रव्य, गुण, पर्याय, नय आदि स्याद्वादके सूचक शब्दोंका अनेक स्थानोंपर उल्लेख पाया जाता है। आगम ग्रन्थोंके ऊपर ईसाके पूर्व चौथी शताब्दिमें भद्रबाहुकी दस निर्युक्तियोंमें भी इन्हीं विचारोंको विशेष रूपसे प्रस्फुटित किया गया है। इसके पश्चात् ईसवी सन् प्रथम शताब्दिके आचार्य उमास्वातिके तत्त्वार्थाधिगमसूत्र और तत्त्वार्थभाष्यमें अनेकांतवादकी और विशेषकर नयवादकी चर्चा विस्तृत रूपमें पायी जाती है। यहां अर्पित, अनर्पित, नयोंके भेद और उपभेदोंका वर्णन विस्तारसे किया गया है। परंतु यहां तक हमें स्याद्वादके सात भंगोंके नामोंका उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

इन सात भंगोंका नाम सर्वप्रथम हमें कुन्दकुन्दके पंचास्तिकाय और प्रवचनसारमें दिखाई पड़ता है। यहां सात भंगोंके केवल नाम एक गाथामें गिना दिये गये हैं। जान पड़ता है, कि इस समय जैन आचार्य अपने सिद्धांतोंपर होनेवाले प्रतिपक्षियोंके कर्कश तर्कप्रहारसे सतर्क हो गये थे, और इसीलिये बौद्धोंके शून्यवादकी तरह जैन श्रमण अनेकांतवादको सप्तभंगीका तार्किकरूप देकर जैन सिद्धांतोंकी रक्षाके लिये प्रवृत्तिशील होने लगे थे। इसके पूर्व सप्तभंगी नयवाद अथवा अधिकसे अधिक स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य इन तीन मूल भंगोंके रूपमें ही पाया जाता है। स्याद्वादको प्रस्फुटित करने वाले जैन आचार्योंमें ईसवी सन्की चौथी शताब्दिके विद्वान् सिद्धसेन दिवाकर और समंतभद्रका नाम सबसे महत्वपूर्ण है। ये दोनो अपूर्व प्रतिभाशाली उच्चकोटिके दार्शनिक विद्वान थे। इन विद्वानोंने जैन तर्कशास्त्रपर सन्मतितर्क, न्यायावतार, युक्त्यनुशासन, आप्तमीमांसा आदि स्वतंत्र ग्रंथोंकी रचना की। सिद्धसेन और समंतभद्रने अनेक प्रकारके दृष्टांतोंसे और नयोंके सापेक्ष और निरपेक्ष वर्णनसे स्याद्वादका अभूतपूर्व ढंगसे प्रतिपादन किया, तथा जैनेतर सम्पूर्ण दृष्टियोंको अनेकांतदृष्टिके अंशमात्र बताकर मिथ्यादर्शनोंके सम्-

१ आया भंते, रयणप्पभा पुढवी अन्ना रयणप्पभा पुढवी ?
गोयमा, रयणप्पभा सिय आया, सिय नो आया,
सिय अवत्तव्वं आया तिय नो आया तिय। भगवती १२-१० पृ ५९२।

२ उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि नाथ दृष्टयः।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः॥ द्वात्रिंशिका ४-१५

हको जैनदर्शन बताते हुए अपनी सर्वसमन्वयात्मक उदार भावनाका परिचय दिया। इनके बाद ईसाकी चौथी पाँचवी शताब्दिमें मल्लवादि और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण नामके श्वेताम्बर विद्वानोंका प्रादुर्भाव हुआ। मल्लवादि अपने समयके महान् तार्किक विद्वान समझे जाते थे। इन्होंने अनेकांतवादका प्रतिपादन करनेके लिये नयचक्र आदि ग्रंथोंकी रचना की। जिनभद्रगणि श्वेताम्बर आगमोंके मर्मज्ञ पण्डित थे, इन्होंने विशेषावश्यकभाष्य आदि शास्त्रोंकी रचना की। जिनभद्रने प्राय सिद्धसेन दिवाकरकी शैलीका ही अनुसरण किया। इन विद्वानोंके पश्चात् ईसाकी आठवीं-नौवीं शताब्दिमें अकलंक और हरिभद्रका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इन विद्वानोंने स्याद्वादका नाना प्रकारसे ऊहापोहात्मक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करके स्याद्वादको सांगोपांग परिपूर्ण बनाया। इस समय प्रतिपक्षी लोग अनेकान्तवादपर अनेक तरहके प्रहार करने लगे थे। कोई लोग अनेकांतको संशय कहते थे, कोई केवल छल का रूपान्तर कहते थे, और कोई इसमें विरोध अनवस्था आदि दोषोंको बताकर इसका खंडन करते थे। ऐसे समयमें अकलंक और हरिभद्रने तत्त्वार्थराजवार्तिक, सिद्धिविनिश्चय, अनेकान्तजयपताका शास्त्रवार्तासमुच्चय, षड्दर्शनसमुच्चय आदि ग्रंथोंका निर्माण करके बड़ी योग्यताके साथ शंकाओंका निवारण किया, और अनेकान्तकी जयपताका फहराई। ईसाकी नौवी शताब्दिमें विद्यानन्द और माणिक्यनन्दि नामके महान् दिगम्बर विद्वान् हो गये हैं। विद्यानन्द अपने समयके बड़े भारी नैयायिक थे। इन्होंने कुमारिल आदि वैदिक विद्वानोंके जैनदर्शनपर होनेवाले आक्षेपोंका बड़ी योग्यतासे परिहार किया है। विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, आदि महान ग्रंथोंको लिखकर अनेक प्रकारसे तार्किक शैलीद्वारा स्याद्वादका प्रतिपादन और समर्थन किया है। माणिक्यनन्दिने सर्वप्रथम जैन न्यायको परीक्षामुखके सूत्रोंमें गूंथकर अपनी अलौकिक प्रतिभाका परिचय देकर जैन न्यायको समुन्नत बनाया है। ईसाकी दसवी ग्यारहवी शताब्दिमें होनेवाले प्रभाचन्द्र और अभयदेव महान तार्किक विद्वान थे। इन विद्वानोंने सन्मतितर्क टीका (वादमहार्णव), प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्रोदय आदि जैन न्यायके ग्रंथ बनाकर जैन दर्शनकी महान सेवा की है। इन विद्वानोंने सौत्रांतिक, वैभाषिक, विज्ञानवाद शून्यवाद, ब्रह्माद्वैत, शब्दाद्वैत आदि वादोंका समन्वय करके स्याद्वादका नैयायिक पद्धति प्रतिपादन किया है। इनके पश्चात् ईसाकी बारहवीं शताब्दिमें वादिदेवसूरि और कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रका नम्बर आता है। वादिदेव वादशक्तिमें असाधारण माने जाते थे। वादिदेवने स्याद्वादका स्पष्ट विवेचन करनेके लिये प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार, स्याद्वादरत्नाकर आदि ग्रंथ लिखे हैं। हेमचन्द्र अपने समयके असाधारण पुरुष थे। इन्होंने अन्ययोग

१ भद्दं मिच्छादसणसमूहमइयस्स अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स॥ सन्मति ३-६५।

२ देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक 'प्रमाणनयैरधिगमः' सूत्रकी व्याख्या, तथा अनेकांतजयपताका।